SHIKSHA SAMVAD
International Journal of Multidisciplinary Research
ISSN: 2584-0983 (Online)
© Shiksha Samvad|Volume-03| Issue-04| June- 2026
Available online at: https://shikshasamvad.com/
DOI:- https://doi.org/10.64880/shikshasamvad.v3i4.15

शिक्षा में भारतीयता : एक समीक्षात्मक अध्ययन

अमृता श्रीवास्तव[1], डॉ0 अजय कुमार सिंह[2]

[1]शोध छात्रा, शिक्षाशास्त्र विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्याय, गोरखपुर

[2]सहायक आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, बी0आर0डी0पी0जी0 कॉलेज, देवरिया

सार

शिक्षा शब्द संस्कृत की शिक्ष धातु से बना है– 'शिक्ष शिक्षणे' जिसका अर्थ सीखना, अध्ययन करना, ज्ञानार्जन करना है। इसका प्रेरणार्थक रूप सिखाना है। संस्कृत कोष में विद्या शब्द संस्कृत की विद् धातु से व्युत्पन्न है जो जानना, अवगत कराना, अध्यापन कराना आदि अर्थों में प्रयुक्त होता है। उपर्युक्त दोनों ही शिक्षा एवं विद्या शब्दों के प्रयोग सीखने, सिखाने की प्रक्रिया के रूप में किये जाते हैं।

अंग्रेजी भाषा में शिक्षा शब्द का पर्याय 'एजूकेशन' (Education) है। शिक्षाविदों के अनुसार 'एजूकेशन' शब्द की व्युत्पत्ति लैटिन (Latin) भाषा के निम्नलिखित शब्दों से हुई है–

1. 'एडूकेटम' (Educatum),
2. 'एडूसीयर' (Educere),
3. 'एडूकेयर' (Educare) ।

एडूकेटम शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है– 'E' तथा 'Duco'। 'E' का अर्थ है अन्दर से तथा 'Duco' का अर्थ है आगे बढ़ाना या विकास। इस प्रकार एडूकेटम शब्द का अर्थ हुआ–बालक की आन्तरिक शक्तियों को बाहर की ओर प्रगट करने की क्रिया। इसी प्रकार 'एडूसीयर' 'Educere' शब्द का अर्थ है 'विकसित करना अथवा निकालना (to lead out) तथा एडूकेयर शब्द का अर्थ है आगे बढ़ाना, बाहर निकालना अथवा विकसित करना (to educate to bring up or to raise)। दूसरे शब्दों में, लैटिन भाषा के उपर्युक्त तीनों शब्दों का अर्थ है–बालक की आन्तरिक शक्तियों का पूर्ण विकास।

भारत विश्व का प्राचीनतम और समृद्धतम बौद्धिक देश है। विश्व का सबसे पुराना साहित्य जो पहले श्रुत रहा और फिर लिखित रूप में आया वह ऋग्वेद है जो विषय–वस्तु की व्यापकता, गहनता और संप्रेषणीयता की दृष्टि से

अद्भुत है और प्रमाणित है। ऋग्वेद काव्यात्मक है जो चिंतन, संवेदना और भाषा की सर्जनात्मकता का प्राचीनतम उत्कृष्ट प्रतिमान है और उसके बाद अन्य तीन वेदों, ब्राह्मण ग्रंथों, उपनिषदों, स्मृतियों, आयुर्वेद, धनुर्वेद, व्याकरण, साहित्य, धर्म–दर्शन विभिन्न विद्याओं और कलाओं की सघन परंपरा का साहित्य उपलब्ध है जो अधिकतर विदेशी आक्रमणों से पूर्व तक अर्थात् 1000 ई. तक लिखा जा चुका है। यह सब लिखित साहित्य जो अधिकतर शोधपूर्ण है, अनुभवात्मक, चिंतनात्मक और मौलिक है, भारत में विद्यमान रही समृद्ध शिक्षा–व्यवस्था से ही संभव हुआ है। नालंदा और तक्षशिला जैसे बड़े आवासीय विश्वविद्यालय, जिनमें अन्य देशों के विद्यार्थी भी अध्ययन करते थे, एक सुदीर्घ, सुव्यवस्थित, सुप्रसिद्ध और उपयोगी शिक्षा–व्यवस्था के केंद्र रहे हैं। अलग–अलग ऋषियों के गुरुकुल, जिनमें सैकड़ों– हजारों विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करते थे, अपनी विचार–दृष्टि और शिक्षा–पद्धति के अलग–अलग संस्थान रहे हैं, भारद्वाज, गौतम, वशिष्ठ, पाराशर, वात्स्यायन, विश्वामित्र, जमदग्नि, अत्रि आदि ऋषियों ने और उनकी वंश–परपंरा तथा विचार–परंपरा ने हजारों वर्षों तक चिंतनशील शिक्षा–व्यवस्था को जारी रखा है। भारतीय दर्शन, धर्म, साहित्य एवं जीवन–शैली में विविधता के बावजूद एक–दूसरे को सम्मान देना, पूर्व की स्थापनाओं को समीक्षात्मक दृष्टि से आगे बढ़ाना, एक खुली, अंतःक्रियात्मक, विश्लेषणात्मक शिक्षा–व्यवस्था का प्रमाण प्रस्तुत करता है।[2]

प्राचीन भारतीय शिक्षा–व्यवस्था की बीज स्थापनाओं, विषय–वस्तु, प्रक्रिया एवं व्यवस्था को हमें समकालीन संदर्भों में प्रासंगिक बनाना ही चाहिए। हम जानते हैं कि शिक्षा–व्यवस्था ही समाज के पुनर्निर्माण की आधारभूत प्रक्रिया है और भारतीय समाज आज पुनर्निर्माण की गहरी अपेक्षा रखता है। इसलिए समाज में सकारात्मक बदलाव की दृष्टि से भारतीय शिक्षा–व्यवस्था में आधारभूत परिवर्तन करने की जरूरत है।

भारतीय शिक्षा संस्कारमूलक रही है, जो आज भी आवासीय व्यवस्था के द्वारा ही अधिक सहजता से संभव हो सकती है। इसलिए हमें प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा को यथासंभव अधिकाधिक आवासीय बनाने की आवश्यकता है। आवासीय शिक्षा–व्यवस्था आत्मसंधानात्मक (Self-discovery oriented), सहभागितापरक (Participatory), सहयोगात्मक (Co-operative), नवाचारयुक्त (innovative), सर्जनात्मक (creative) और शोधात्मक (research oriented) तथा प्रभावी (effective) हो सकने का व्यावहारिक मंच प्रदान कर सकती है। किंतु केवल आवासीय होने से भी सब–कुछ नहीं हो जाता, पश्चिमी देशों के तौर–तरीकों से बने हमारे विश्वविद्यालयों के बहुत–से छात्रावास कितने संस्कारहीन हैं, और अपराधों के आश्रय–स्थल भी बने हुए हैं, यह सब जानते हैं। किंतु यदि हम आवासीय व्यवस्था में प्रत्येक छात्र–छात्रा का आत्मबोध, आत्मछवि मजबूत करके उससे वैश्विक स्तर के सर्जनात्मक योगदान की अपेक्षा करें तो वह निश्चय ही आत्मसंधानात्मक दृष्टि अपनाकर विश्वस्तरीय शोधकर्मी और नवाचारी बन सकेगा, और तब प्रत्येक विद्यालय–महाविद्यालय–विश्वविद्यालय में सर्जनात्मकता का व्यापक विस्फोट होगा। हमारे संस्कारशील बच्चे सहभागिता की प्रक्रिया से एक–से–एक नवाचारों के पुरोधा बनते जाएँगे।[3]

शिक्षा का प्राथमिक उत्तरदायित्व किसके प्रति है? इस सवाल का लगभग सर्वसम्मत उत्तर होगा शिक्षार्थी के प्रति, लेकिन शिक्षार्थी के प्रति दायित्व का तात्पर्य क्या है? तात्पर्य है शिक्षार्थी में अंतर्निहित सम्भावनाओं के प्रस्फुटन और विकास का माध्यम होना। लेकिन जब हम कहते हैं कि शिक्षार्थी में अंतर्निहित सम्भावनाओं का विकास–तो इसका तात्पर्य क्या है? 'शेखरः एक जीवनी' से अज्ञेय के शब्द उधार लेकर कहें तो जो मैं हूँ, वह मैं हो सकूँ। यह हो सकना क्या है और इसके लिए क्या करणीय है?

यह सवाल किया जाना चाहिए कि यदि शिक्षा व्यक्ति की अंतर्निहित सम्भावनाओं के मूर्त होने की प्रक्रिया है तो इसके लिए ऐसा कोई पाठ्यक्रम या पाठ्यचर्या कैसे बनायी जा सकती है जो सभी पर एक साथ लागू होती हो? क्या सभी एक जैसे हैं या होने चाहिए? इस एकरूपीकरण का समर्थन लोकतांत्रिक बोध वाला कोई व्यक्ति नहीं कर सकता–बल्कि ऐसा करना, यदि वैज्ञानिक दृष्टि से देखें तो, प्रकृति के नियम के भी विरुद्ध होगा। प्रकृति में कुछ भी ऐसा नहीं है जो एक जैसा हो। समान गुणधर्म यांनी एक जाति की प्रत्येक इकाई का अपना अलग वैशिष्ट्य होता है। एक पेड़ की अनगिनत पत्तियों में से कोई भी पत्ती किसी दूसरी पत्ती से पूरी तरह कभी नहीं मिलती। ऐसा ही मनुष्यों के साथ भी है। कोई मनुष्य किसी दूसरे मनुष्य जैसा नहीं होता। रघुवीर सहाय के शब्दों में कहें तो प्रत्येक व्यक्ति अद्वितीय होता है और जब हम उसे एक सामान्य शिक्षा–प्रक्रिया से गुजार रहे होते हैं तो उससे उसके अद्वितीय होने का अर्थ उसका अन्य से अधिक अधिकारों या सुविधाओं का हकदार होना नहीं है। सामान्यतः हम अद्वितीयता या निरालेपन या वैशिष्ट्य को समानता का विरोधी मान लेते हैं। समानता समरूपता नहीं है बल्कि जहाँ प्रत्येक की अद्वितीयता सुरक्षित है। वहाँ समानता स्वयमेव सुरक्षित हो जाती है।[4]

यह आश्चर्यजनक पर विडम्बनापूर्ण है कि लगभग सभी शिक्षा–सम्मेलनों और संगोष्ठियों में बाजार, वैश्वीकरण और उदारीकरण की नीतियों और उनके परिणामों की घोर आलोचना के बावजूद शिक्षाशास्त्रियों की तरफ से राज्य पर ऐसा कोई दबाव नहीं डाला जा रहा है कि वह अपनी नीतियों पर शिक्षा के संदर्भ में पुनर्विचार करे– बल्कि शिक्षाशास्त्रियों पर ही बाजार के संदर्भ में शिक्षा में ही बदलाव के लिए दबाव डाला और उसे मनवाया जाता रहा है। क्या ऐसा सम्भव नहीं है कि यदि राज्य शिक्षा शास्त्रियों के मंतव्य पर विचार नहीं करता है तो उन्हें स्वयं को राज्य से अलग करते हुए ऐसे स्वायत्त संस्थानों के विकास में और मदद करनी चाहिए जो इस जाल से निकलने के लिए वैकल्पिक प्रयत्न कर रहे हैं।

देश में, छोटे सही, ऐसे कई स्वायत्त संस्थान हैं जो इस दिशा में प्रयत्नशील हैं, ऐसे सभी संस्थानों के लिए एक विनम्र सुझाव है। शिक्षा में, सामान्यतः अनुशासन का बहुत महत्त्व माना जाता है। लेकिन मुझे लगता है कि आज के संदर्भ में शिक्षा का प्रमुख कर्तव्य विद्रोही बनाना है। प्रत्येक व्यक्ति का यह अधिकार है कि वह अपनी अद्वितीयता की अभिव्यक्ति कर सके, उसे सिद्ध कर सके। लेकिन यदि कोई व्यवस्था, बाजार या किसी राजनीति की आवश्यकता के कारण, उसे वह होने से रोकती है तो उसके अंदर ऐसी व्यवस्था के प्रतिरोध का सामर्थ्य विकसित करना शिक्षा का ही दायित्व है। बहुत से शिक्षा संस्थान अलग तरह की शिक्षा की बात तो करते हैं, लेकिन अपने शिक्षार्थी को प्रतिरोध के लिए प्रेरित और उसके लिए सामर्थ्य जुटाने के लिए शिक्षित नहीं करते। कहा जा सकता है कि यह तो राजनीतिक संगठनों का काम है लेकिन जब राजनीतिक संगठन स्वयं बाजार के एजेंट बन गये हों तो यह दायित्व सीधे शिक्षा पर आ जाता है। शिक्षा की सार्थकता विद्रोही पैदा करने में भी हो सकती है– अहिंसक विद्रोही बनाने यानी शिक्षार्थी को प्रतिरोध के अहिंसक तरीकों में प्रशिक्षित करने में। महात्मा गाँधी की नयी तालीम, दरअसल इसी दिशा में एक प्रयास था। उसका प्रयोजन केवल कुछ दस्तकारों आदि को प्रशिक्षण देना या किसी व्यवसाय के योग्य बनाना मात्र नहीं था। यदि नयी तालीम सत्य की शिक्षा है तो असत्य के खिलाफ सत्याग्रह भी उसका एक अनिवार्य दायित्व है। नयी तालीम की योजना को ठुकरा दिये जाने का। असल कारण भी शायद यही था कि लम्बे समय तक चलने पर एक ऐसा समाज तैयार कर सकती थी जो राज्य और बाजार का मुखापेक्षी नहीं होता और इसलिए जरूरत पड़ने पर अपने प्रति अहिंसक बाजार और राज्य का अहिंसक प्रतिरोध कर सकता। क्या अपने को उसके बिना स्वयं शिक्षा और संस्कृति की ही राज्य से स्वतंत्र मानने वाले शिक्षा संस्थान शिक्षार्थी में अपनी स्वतंत्रता को बचाने और अपने पर हो रहे अन्याय के विरुद्ध विद्रोह की प्रेरणा बन

© Shiksha Samvad | Received: 25 May-2026 | Accepted: 05 June - 2026 | Published: 12 June - 2026

सकेंगे? यह नहीं भूलना चाहिए कि दुनिया में बहुत–सी क्रांतियों के बीज शिक्षा संस्थानों में ही बोये गये हैं। शिक्षा का प्रयोजन आत्मसृजन है। लेकिन जिस व्यवस्था में आत्मा का ही लोप हो रहा हो, उसके खिलाफ सत्याग्रह फिलहाल शिक्षा जगत ही नहीं बल्कि पूरे संस्कृति–जगत की पहली प्रासंगिकता है। उसके बिना स्वयं शिक्षा और संस्कृति की ही कोई प्रासंगिकता नहीं रह जायेगी।[5]

''शिक्षा संस्थाओं को ऐसा नेतृत्व चाहिए जिसमें शिक्षा के प्रति पूर्ण समर्पण और प्रतिबद्धता का भाव हो जो यह मानता हो कि वह भारत के भविष्य निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। ऐसे व्यक्ति को संस्था में दृष्टिकोण परिवर्तन और कार्यसंस्कृति के परिवर्तन के लिए स्वयं का उदाहरण प्रस्तुत करना होता है। जो लोग उसे संस्था में मिले हों, उन पर विश्वास करना होगा और अपने पर यह विश्वास रखना होगा कि वह इन्हें संस्था के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए पूर्णरूपेण समर्पित बना सकता है। इन संस्थाओं को ऐसे व्यक्ति चाहिए जो सामूहिकता में विश्वास रखते हों, मिलकर 'परिवर्तन' का अवलोकन करें, विश्लेषण करें, जो उपयोगी हो या आगे हो सकता हो, उस पर केन्द्रित करें।''[6]

शिक्षा संस्थाओं को ऐसा नेतृत्व चाहिए जिसमें शिक्षा के प्रति पूर्ण समर्पण और प्रतिबद्धता का भाव हो जो यह मानता हो कि वह भारत के भविष्य निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। ऐसे व्यक्ति को संस्था में दृष्टिकोण परिवर्तन और कार्यसंस्कृति परिवर्तन के लिए स्वयं का उदाहरण प्रस्तुत करना होता है। जो लोग उसे संस्था में मिले हों, उन पर विश्वास करना होगा और अपने पर यह विश्वास रखना होगा कि वह इन्हें संस्था के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए पूर्णरूपेण समर्पित बना सकता है! इन संस्थाओं को ऐसे व्यक्ति चाहिए जो सामूहिकता में विश्वास रखते हों, मिलकर 'परिवर्तन' का अवलोकन करें, विश्लेषण करें, जो उपयोगी हो या आगे हो सकता हो, उस पर ध्यान केंद्रित करें। आवश्यक है संस्था के बुनियादी उद्देश्यों की गहरी समझ और पक्के आत्मविश्वास की। प्रेरणा, सम्मान और संहभागिता के साथ मिलकर शुरू किए नवाचारों से हर व्यक्ति की क्षमता और प्रतिबद्धता को बढ़ाया जा सकता है। हर सफल नेतृत्व इसी ढंग से संस्था की कार्यसंस्कृति को प्रभावोत्पादक बनाने में सफल रहा है। शैक्षिक नेतृत्व का सम्मान उसके योगदान तथा विद्वत्ता से होता है, न कि उसके ऊँचे पद पर प्रतिष्ठित हो जाने से। वह सम्मान की अपेक्षा नहीं करता है, वह तो उसे स्वतः ही मिल जाता है। वह जानता है कि लोगों को प्रभावित करने के लिए अपना उदाहरण ही सामने रखना होगा। वह निरंतर नवीन परिवर्तन में विश्वास रखता है। वह चुनौतियाँ स्वीकार करता है, नए समाधान मिलकर ढूँढ़ लेता है। अन्य को श्रेय देने में पीछे नहीं रहता है। उसके लिए संस्था का संचालन एक कला है।

स्मृतियों में विद्यादान पर महत्वपूर्ण प्रकाश डाला गया है। विद्यादान को सर्वश्रेष्ठ दान माना गया है। अत्रि का कथन है कि विद्यादान सभी दानों में श्रेष्ठ है।[7] संवर्त स्मृति में विद्यादान को सर्वश्रेष्ठ बताते हुए उसे ब्रह्मलोक की प्राप्ति का साधन बताया गया है।[8] वृहत्पराशर स्मृति में विद्यादान का सविस्तार वर्णन किया गया है।[9] इसका कथन है कि द्विज शिष्यों को पढ़ाना विद्यादान है। इसका सौगुना फल होता है। विद्यादान से परब्रह्म की प्राप्ति होती है। विद्यादान ही अनश्वर दान है। इसकी तुलना किसी दान से नहीं की जा सकती है।[10]

मनु ने स्वाध्याय पर बहुत महत्त्व दिया है। उनका कथन है कि जो विधिपूर्वक एक वर्ष भी स्वाध्याय करता है, उसको घी, दूध, दही, मधु सदाव प्राप्त होता है।[10] मनु का यह कथन है कि स्वाध्याय और यज्ञ में कभी प्रमाद न करे। इन दोनों कर्मों से ही संसार का पालन होता है।[11] मनु का आदेश है कि स्वाध्याय और अध्यापन में जीवन की कृतकृत्यता है। अतः इनका कभी परित्याग न करें। इनमें विघ्न डालने वाले सभी अन्य कार्यों को छोड़ दें।[12] मनु का मत है कि स्वाध्याय से मनुष्य का जीवन सुखी और उपयोगी होता है। बुद्धि की वृद्धि होती है और शास्त्रों के निरन्तर अध्ययन से

उसका ज्ञान तेजस्वी होता है।[13] वृहत्पराशर में भी दैनिक स्वाध्याय को ब्रह्मज्ञान का साधन माना गया है। गौतम और वशिष्ठ ने भी प्रतिदिन स्वाध्याय करना अनिवार्य बताया है। वशिष्ठ ने प्रातः उठते ही स्वाध्याय करने का विधान किया है।

मनुष्य को मनुष्यत्व व समाज में समायोजन हेतु प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से परिवर्तित करने का कार्य शिक्षा द्वारा सम्भव है। मनुष्य की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति–भोजन, वस्त्र तथा आवास आदि की भाँति शिक्षा भी मानव की मूलभूत आवश्यकता है। गांधी जी के अनुसार–''जो शिक्षा चित्त की शुद्धि न करे, निर्वाह का साधन न बनाये तथा स्वतंत्र रहने का हौसला और सामर्थ्य न उपजाये उस शिक्षा में चाहे कितना खजाना, तार्किक कुशलता मौजूद हो, वह सच्ची शिक्षा नहीं।''[14] शिक्षा प्रकाशपुंज, अन्तर्दृष्टि तथा मनुष्य का तीसरा ने मात्रा जाता है। उसका जीवन में गहन महत्त्व एवं आवश्यक है।

शिक्षा समाज की आवश्यकताओं, परम्पराओं, प्रथाओं में सहायक है अतः व्यक्ति शिक्षा द्वारा ही समाज में समायोजन करता है, जिससे समाज में सभ्यता, संस्कृति एवं धर्म आदि का विकास होता है। शिक्षा के अभाव में व्यक्ति पत्थर के समान है जिस प्रकार पत्थर कलाकार के हाथ में आने पर सुन्दर–सुन्दर कलाकृतियों को धारण करके अपने आपको सार्थक समझते हैं, उसी प्रकार शिक्षा मनुष्य की अन्तर्निहित शक्तियों, गुण का प्रस्फुटन करती है।

संदर्भ सूची

1. दुबे, अभय कुमार एवं यादव, डॉ0 उमेश, वर्तमान भारतीय समाज एवं प्रारम्भिक शिक्षा, राखी प्रकाशन प्रा0लि0, आगरा, प्रथम संस्करण 2018, पृ0 2
2. शैक्षिक मंथन (मासिक) 01 मई 2018, पृ0 17
3. वही, पृ0 18
4. वही, पृ0 19
5. वही, पृ0 20
6. वही, पृ0 21
7. अत्रि सं0 338
8. संवर्त0 1.81
9. बृहत्पराशर स्मृति 10.234–249
10. बृ0 परा0 10.241
11. मनु0 2.240
12. मनु0 4.17
13. मनु0 4.19–20
14. पाण्डेय, डॉ0 रामशकल, विश्व के श्रेष्ठ शिक्षाशास्त्री, श्री विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, संस्करण 2013, पृ

Cite this Article:

अमृता श्रीवास्तव, डा0 अजय कुमार सिंह, "शिक्षा में भारतीयता: एक समीक्षात्मक अध्ययन" Shiksha Samvad International Open Access Peer-Reviewed & Refereed Journal of Multidisciplinary Research, ISSN: 2584-0983 (Online), Volume 03, Issue 04, Pp.126-130, June-2026. Journal URL: https://shikshasamvad.com/

This is an Open Access Journal / article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution License CC BY-NC-ND 3.0) which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited. All rights reserved.

CERTIFICATE

of Publication

This Certificate is proudly presented to

अमृता श्रीवास्तव[1], डॉ0 अजय कुमार सिंह[2]

For publication of research paper title

शिक्षा में भारतीयता : एक समीक्षात्मक अध्ययन

Published in 'Shiksha Samvad' Peer-Reviewed and Refereed Research Journal and E-ISSN: 2584-0983(Online), Volume-03, Issue-04, Month June 2026.

Dr. Neeraj Yadav
Editor-In-Chief

Dr. Lohans Kumar Kalyani
Executive-chief- Editor

Note: This E-Certificate is valid with published paper and the paper must be available online at: https://shikshasamvad.com/

DOI:- https://doi.org/10.64880/shikshasamvad.v3i4.15